chapter - 1

प्रथम अध्याय

हिन्दी कवि सम्मेलनों की मंचीय कविता का प्रारंभिक प्रारूप

- विकास क्रम
- मंचीय हिन्दी–काव्य की भाषा और शैली
- संस्कृति–संरक्षण
- बौद्धिक – मनोरंजन में योगदान
- राष्ट्र – चिन्तन की दुरुहता
- राजनीतिज्ञों द्वारा उपेक्षा
- आत्म – प्रर्वचना
- कवि सम्मेलनों की व्यवस्था और प्रबंधन
- आयोजन का स्थान

प्रथम अध्याय

हिन्दी कवि सम्मेलनों की मंचीय कविता का प्रारंभिक प्रारूप

हिन्दी–जगत में सार्वजनिक कवि सम्मेलनों की परम्परा का सूत्रपात आज से लगभग 80 वर्ष पूर्व हुआ था। उससे पूर्व देश में उर्दू–मुशाइरों का ही प्रचलन था। यदाकदा राजदरबारों में आयोजित होनेवाले काव्योत्सवों में सामान्य जन का प्रवेश वर्जित रहता था। बाद में कुछ हिन्दी कवियों द्वारा राजमहलों से बाहर छोटी–मोटी पढ़न्त–गोष्ठियों अथवा कवि–गोष्ठियों का भी आयोजन किया जाने लगा, परन्तु स्थान, प्रकाश–व्यवस्था एवं ध्वनि–विस्तारक यंत्रादि की कमी के कारण उनमें उपस्थित होने वाले काव्य–रसिकों की संख्या सीमित ही रहती थी। इस प्रकर तत्कालीन हिन्दी कविता जन–साधारण के लिए केवल पाठ की वस्तु ही बनी रही, उसे कवि मुख से सुन पाने का सौभाग्य–विरल व्यक्तियों को ही मिल पाता था।

'''**कवि-सम्मेलन'** का शाब्दिक अर्थ है – **'कवियों का सम्मेलन'** अर्थात ऐसा आयोजन जिसमें विभिन्न कवि एकत्र होकर अपनी-अपनी कविताओं का एक ही मंच से पाठ करें।''[1]

वर्तमान समय में कवि-सम्मेलनों का आयोजन प्रायः विद्यालयों तथा संस्थाओं के वार्षिकोत्सव, राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक अथवा ऐतिहासिक पर्व, महापुरुषों के जन्मदिन तथा प्रदर्शनी मेला आदि सामूहिक-उल्लास के अवसरों पर किया जाता है। कभी-कभी मात्र साहित्यिक-मनोरंजन के उद्देश्य से भी कवि-सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं।

इनके अतिरिक्त आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों पर भी कवि-सम्मेलनों के आयोजन किये जाने लगे हैं। उनमें कुछ खुले पण्डाल में श्रोताओं के सम्मुख किए जाते हैं तो कुछ स्टूडियों के भीतर बन्द कमरे में होते हैं जिन्हें लोग केवल रेडियो के माध्यम से ही सुन पाते हैं। दूरदर्शन (टेलीविजन) पर भी कवि-सम्मेलनों के कार्यक्रम प्रदर्शित किये जाते हैं। फिल्मों में भी श्री ताराचन्द बड़जात्या द्वारा निर्मित ''कवि-सम्मेलन'' नामक फिल्म इसका उदाहरण है। आजकल इन्टरनेट के माध्यम से भी श्रोता देश-विदेश में बैठे-बैठे कवि-सम्मेलनों का आनंद उठा सकते हैं और लगभग सभी प्रसिद्ध मंचीय कवियों के विडियो भी फेसबुक या उनकी पर्सनल वेबसाइट पर उपलब्ध हैं।

पढंत-गोष्ठियाँ तथा कवि-गोष्ठियाँ ही वर्तमान हिन्दी कवि-सम्मेलनों की जननी हैं। इन गोष्ठियों के द्वारा जब जनसाधारण में काव्य-श्रवण के प्रति विशेष रुचि जाग्रत हुई, तब अधिकाधिक लोगों को उसका लाभ पहुँचाने की दृष्टि से काव्य पाठ के जो कार्यक्रम बड़े पैमाने पर आयोजित किए गए, उन्हें ''कवि सम्मेलन'' कहा जाने लगा।

उर्दू-मुशाइरे बहुत पहले से ही सार्वजनिक रूप में आयोजित किए जा रहे थे – यह बात पहले कही जा चुकी है। उनके समानान्तर हिन्दी-कविता को प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से हिन्दी कवियों तथा काव्य-प्रेमियों ने भी विशाल पैमाने पर सार्वजनिक हिन्दी कवि-सम्मेलन आयोजित करने की परम्परा का सूत्रपात किया।

''विद्युत-प्रकाश एवं ध्वनि-विस्तारक यन्त्रों की उपस्थिति में सार्वजनिक कवि-सम्मेलनों के उद्भव से हिन्दी-जगत में एक नवीन-युग का सूत्रपात हुआ। ऐसे कवि-सम्मेलन हिन्दी कविता के प्रचार-प्रसार के माध्यम तो बने ही हैं, जन-जागरण तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्तव्य-बोध की दिशा में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। स्वतन्त्रतापूर्व जन-मानस में भी इनका स्वराज्य-प्राप्ति की लालसा को जगाने तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल में 'भारत-चीन' तथा 'भारत-पाक' युद्ध के अवसरों पर स्वतन्त्रता की रक्षा तथा राष्ट्र के प्रति कर्तव्य-पालन की दिशा में देशवासियों को प्रेरित करने में कवि-सम्मेलनों ने जिस महत्वपूर्ण भूमिका को निभाया है, वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास का एक स्वर्णिम-पृष्ठ है।''[2]

समय-समय पर शासन की त्रुटियों की ओर इंगित करते हुए जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति में भी मंचीय-कवि पीछे नहीं रहे हैं। सच पूछा जाय तो आज के मंचीय-कवि ने जन-भावनाओं के साहित्यिक-प्रवक्ता का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। और किसी भी विषय पर किये जाने वाले भाषणों की तुलना में उसका काव्य-पाठ जन-गण-मन को विशेष रूप से आंदोलित करता है।

इन सबके अतिरिक्त सार्वजनिक मनोरंजन के प्राचीन तथा हल्के माध्यमों से जो जन-रुचि विकृत होती चली जा रही थी, उसे स्वस्थ, सोद्देश्य, साहित्यिक एवं बौद्धिक रस-धारा की ओर प्रेरित करने के यत्न प्रशंसनीय कहे जा सकते हैं। अपनी इन अनेक विशेषताओं के कारण हिन्दी-साहित्य की इस अभिनव विधा ने अल्पकाल में ही इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि आज देश के प्रायः सभी भागों में प्रतिवर्ष सैकड़ों की संख्या में सार्वजनिक हिन्दी कवि सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं और उनमें उपस्थित रहनेवाले काव्य-प्रेमी श्रोताओं की संख्या लाखों तक जा पहुँचती है। आकाशवाणी, दूर-दर्शन तथा फिल्मों में भी कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया जाना इस साहित्यिक विधा की लोकप्रियता का एक अन्य उदाहरण है।

"कवि-सम्मेलन के मंच से काव्य-पाठ करने वाला कवि केवल अपनी साहित्यिक प्रतिभा को ही प्रकट नहीं करता अपितु वह अपने कण्ठ-स्वर तथा हाव-भावादि के प्रदर्शन द्वारा काव्य-गत विषय-वस्तु को साकार रूप देने की चेष्टा भी करता है। इस प्रकार मंचीय-काव्य अपने श्रव्य तथा दृश्य इन दोनों रूपों में जन-मानस के आकर्षण का केन्द्र बनता है। अपनी इस दुहरी विशेषता के कारण ही मंचीय-कवि साहित्यिक दृष्टि से अधिक समृद्ध अमंचीय-कवियों की तुलना में कहीं अधिक लोकप्रिय होकर प्रत्यक्ष जन-सम्पर्क के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र को विशेष रूप से आन्दोलित करने में सक्षम सिद्ध होते हैं।"[3]

सार्वजनिक कवि-सम्मेलनों के उद्‌भव से पूर्व हिन्दी का कवि अपने संपूर्ण जीवन-काल में भी उतनी लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर पाता था, जितनी कि आज के मंचीय-कवि अल्प-काल में ही प्राप्त कर लेते हैं। इस दृष्टि से देखा जाये तो कवि-सम्मेलन साहित्य, समाज तथा राष्ट्र के साथ-साथ स्वयं कवि के हित में भी अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

हिन्दी कवि-सम्मेलनों के उद्‌भव तथा उसमें प्रमुख रूप से भाग लेनेवाले मंचीय हिन्दी-कवियों का इतिहास लगभग 70-80 वर्ष पुराना हो चुका है। तथापि इस संदर्भ में शोध-कार्य का न होना आश्चर्य जनक सा प्रतीत होता था। अपने इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से मैंने हिन्दी-साहित्य के इतिहास के एक अभाव की पूर्ति का विनम्र प्रयास किया है, जो आपके समक्ष प्रस्तुत है।

कवि राजेश दीक्षित कहते हैं – ''प्रत्येक कवि सम्मेलन एक दीपक की तरह हैं, जिसमें श्रोताओं की स्थिति तेल जैसी है और कवि की स्थिति बाती जैसी। बाती की लौ कविता है। जिस तरह दीपक में मौजूद बाती अपनी लौ से अंधेरे के विरुद्ध संग्राम करती नजर आती है, वैसे ही कवि-सम्मेलन रूपी दीपक में भी कवि अपनी कविता के बल पर अंधेरे से जूझता हुआ दिखाई देता है। समूचे परिदृश्य पर अगर सकारात्मक दृष्टि डालें तो कवि-सम्मेलनों की शृंखला दीपावली का सा दृश्य उपस्थित करती है, इसलिए मुझे हमेशा लगता है कि कवि-सम्मेलन अपने आप में बहुत मूल्यवान एवं परम विलक्षण महोत्सव है। कवि-सम्मेलनों में कई बार अच्छे कवि की अच्छी कविता की बुरी प्रस्तुति दूर हो जाती है तथा बुरे कवि की बुरी कविता की बढ़िया प्रस्तुति को खूब सराहना प्राप्त होती है। ऐसे में कई लोग कवि-सम्मेलन रूपी दीपक के औचित्य पर प्रश्न उठाते हुए इसमें अपनी अनास्था व्यक्त करने लगते हैं। मैं हमेशा उन्हें यह समझाने का प्रयास करता हूँ कि कवि-सम्मेलन रूपी दीपक में श्रोता रूपी तेल तो होता ही है। बाती के समर्थन व सम्मान के लिए है। लेकिन बाती ही कभी तेल में गिरकर बुझ जाए तो इसमें दोष किसका है ?''[4]

''विश्व में गीतों के श्रेष्ठतम कवि-सम्मेलन का नाम है 'गीत-चांदनी'। तरुण समाज जयपुर द्वारा यह कवि-सम्मेलन प्रतिवर्ष शरदोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित किया जाता है। तिथि होती है शरद-पूर्णिमा के समीपस्थ शनिवार की। स्थान जयपुर के विख्यात जल महत्व की। समयावधि रात ठीक आठ बजे से लेकर तब तक जब तक कि कवियों और श्रोताओं का मन नहीं भरे।''[5]

आज के दौर में गीत चांदनी एक विलक्षण कवि-सम्मेलन है। विगत वर्षो में कवि-सम्मेलन व्यवस्थाओं में तड़क-भड़क तो बढ़ी है लेकिन कविताओं के स्तर में लगातार गिरावट आ रही है। ऐसे में यह कार्यक्रम एक प्रकाश स्तम्भ की तरह है। तरुण समाज प्रतिवर्ष इसे पूरी निष्ठा के साथ आयोजित करता है तो श्रोता इसे पूरी आस्था के साथ सुनते हैं। गीतकार भी अपने श्रेष्ठतम गीतों का पाठ पूरी क्षमता से करते रहे हैं।

विकास क्रम :

अब वक्त आ गया है कि हम कवि-सम्मेलनों को सही दिशा में नियोजित और नियंत्रित विकास के मार्ग पर आगे बढ़ाएं। इसके लिए प्रथम चरण में कवि सम्मेलनों का दस्तावेजीकरण होना जरूरी है। कवि-सम्मेलन से सम्बन्धित तमाम जानकारियाँ न केवल कागज पर लिखी गई अपितु उनका प्रकाशन और वितरण भी हो। इससे समाज का वह वर्ग कवि सम्मेलनों के बारे में अधिकाधिक जानकारियाँ प्राप्त कर सकेगा जिसकी कवि-सम्मेलनों में सक्रिय भागीदारी से इस विधा में पूंजी निवेश का मार्ग प्रशस्त हो

सकता है।

कवि-सम्मेलन कवियों के लिए तो सृजन का आनन्द है। लेकिन आयोजकों और संयोजकों के लिए एक प्रोडक्ट है। एक ऐसा प्रोडक्ट जो श्रोताओं को साफ-सुथरा और स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करता हुआ उनकी अभिरुचि को भी परिष्कृत करता है। आयोजकों के लिए कवि-सम्मेलन ठीक वैसा ही प्रोडक्ट है जैसा कि फिल्म निर्माताओं के लिए फिल्म। एक फिल्म का निर्माण उनमें जुड़े तमाम लोगों के हितों का संवर्धन करते हुए आगे बढता है। इससे अभिनेताओं, गीतकारों, संगीतकारों तथा तकनीकशियनों और व्यापारियों को नियमित रूप से काम मिलने लगता है। यद्यपि कवि-सम्मेलन कभी भी फिल्म नहीं हो सकते और फिल्म कभी कवि-सम्मेलन नहीं हो सकतीं, लेकिन अपने विकास के लिए उन रास्तों को तो चुन ही सकते हैं जिन पर चलते हुए फिल्मों ने अपना इतना विकास किया है। फिल्मों का तो निर्माण और वितरण ही दस्तावेजों के आधार पर होता है। कवि-सम्मेलनों में ऐसा होना सम्भव नहीं है लेकिन कवि-सम्मेलन के हो जाने के बाद तो उसका दस्तावेजीकरण किया ही जा सकता है।

कवि-सम्मेलनों के परिणाम स्वरूप जो परिवर्तन समाज के सामने आएगा वह अनेक प्रतिभाशाली लोगों को इस विधा से जोड़ेगा। कवि पैदा होते हैं बनाए नहीं जाते लेकिन आयोजक और संयोजक तो बनाए ही जा सकते हैं। हमें आयोजकों और संयोजकों को उचित मान देते हुए उनकी संख्या में बढ़ोतरी करने के सार्थक प्रयास की शुरुआत करनी चाहिए।

"तरुण समाज जयपुर द्वारा होली के अवसर पर स्थानीय चौगान स्टेडियम में प्रतिवर्ष आयोजित होनेवाला महामूर्ख सम्मेलन दुनिया का सबसे बड़ा हास्योत्सव है जो हास्य कवि-सम्मेलन के रूप में आयोजित किया जा सकता है।"[6]

कवि-सम्मेलनों में एकत्र कवि विभिन्न रसों की रचनाओं का पाठ करते हैं। काव्य पाठ के समय कवि केवल अपनी साहित्यिक-प्रतिभा का ही परिचय नहीं देता अपितु वह अपने कण्ठ-स्वर एवं हाव-भाव के द्वारा काव्यगत विषय-वस्तु को साकार रूप देने की चेष्टा भी करता है। इस प्रकार मंचीय-काव्य अपने श्रव्य तथा दृश्य दोनों रूपों में जन-मानस के आकर्षण का केन्द्र बनता है। स्वर-संयोजन तथा भाव-प्रदर्शन की कला में जो कवि जितना अधिक प्रवीण होता है वह श्रोताओं को उतना ही अधिक आकर्षित करता है। काव्य-पाठ एवं भाव प्रदर्शन इन दुहरी विशेषताओं के कारण ही समृद्ध तथा श्रेष्ठ अमंचीय कवियों की तुलना में कहीं अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर लेता है तथा प्रत्यक्ष जन-संपर्क के कारण राष्ट्र तथा समाज को भी विशेष रूप से प्रभावित करता है।

कवि-सम्मेलन में काव्य-पाठ के लिए विभिन्न रसों की रचनाएँ सुनानेवाले कवि

आमंत्रित किये जाते हैं। उनमें वीर, शृंगार तथा हास्य रस के कवियों की प्रमुखता रहती है। कभी-कभी करुण तथा भक्ति-रस की रचनाएँ भी सुनने को मिलती हैं। रसों की विभिन्नता के कारण एक अच्छा समा बंध जाता है, जिससे सभी रुचि के श्रोता आनंदित होते हैं।

कवि-सम्मेलन में काव्य-पाठ जब आरम्भ होता है तब सर्वप्रथम "वाणी-वन्दना" करने का नियम है। फिर पहले नई पीढी के कवि काव्य-पाठ के लिए आमंत्रित किया जाता है, बाद में क्रमशः पुरानी पीढ़ी के कवियों को काव्य-पाठ के लिए आमंत्रित किये जाते हैं। यहाँ नई पीढ़ी से तात्पर्य नवयुवक-कवियों से न होकर उन कवियों से है, जिनकी काव्य-प्रतिभा सामान्य कोटि की मानी जाती है। तत्पश्चात् उत्तरोत्तर श्रेष्ठ काव्य-पाठ करने वाले कवियों को आमंत्रित किया जाता है। जो कवि किसी समय अपने काव्य-पाठ के लिए विशेष प्रसिद्ध रहे हों, परन्तु वर्तमान में वृद्धावस्था अथवा अन्य कारणों से अधिक आकर्षक ढंग से काव्य पाठ न कर पाते हों उन्हें ही वरिष्ठता क्रम से बाद में ही आमंत्रित करने की शिष्टता प्रदर्शित की जाती है। इसी प्रकार कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहे कवि को भी अन्य सब कवियों के अन्त में काव्य-पाठ के लिए आमंत्रित किया जाता है। परन्तु कभी-कभी वरिष्ठता के इस क्रम में जानबूझकर ढील भी दे दी जाती है। अनेक अवसरों पर ऐसा भी होता है, जो सामान्य कवियों की रचनाओं को सुनते-सुनते श्रोतागण ऊबने लगते हैं और वे काव्य-पाठ हेतु किसी प्रभावोत्पादक कवि की माँग कर उठते हैं। उस समय कवि-सम्मेलन का संचालक वरिष्ठता-क्रम को भंग करके तत्कालीन वातवावरण को नियंत्रित कर सकने की क्षमता रखनेवाले किसी वरिष्ठ अथवा प्रभावशाली कवि के नाम की उद्घोषणा बीच में ही कर देता है। इस प्रकार श्रोताओं की रुचि एवं कवि-सम्मेलन की सफलता हेतु विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही काव्य-पाठ हेतु कवियों का क्रम निर्धारित किया जाता है। कभी-कभी जिन कवियों को श्रोताओं द्वारा अधिक सराहा जाता है, उन्हें क्रम से हटाकर बीच-बीच में अनेक बार काव्य-पाठ के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता भी पड़ जाया करती है।

"कवियों की गायकी के सम्मेलनों में पढ़न्त गोष्ठियाँ अत्यधिक लोकप्रिय हो रही थीं। इन्हें न केवल सार्वजनिक स्थलों, अपितु व्यक्तिगत निवासों पर भी आयोजित किया जा सकता था तथा इनके माध्यम से केवल चार-पाँच व्यक्ति भी मिल-बैठकर काव्यानन्दित हो सकते थे। अब इनका प्रचार-प्रसार खूब हुआ। ब्रजक्षेत्र से उद्भुत इस प्रकार की गोष्ठियाँ धीरे-धीरे अन्य प्रदेशों में भी आयोजित होने लगी।, उत्तरप्रदेश के कानपुर, वाराणसी, प्रयाग, कानपुर, झाँसी, इटावा, फरुखाबाद, रामपुर आदि नगरों के अतिरिक्त वर्तमान मध्यप्रदेश के ग्वालियर, भोपाल और मुरैना, बन्देलखण्ड के ओरछा,

टीकमगढ़, पन्ना बिजावर छत्तरपुर और रीवां तथा पंजाब के पटियाला तथा इतर स्टेट और नगर इन गोष्ठियों के केन्द्र बने। ब्रजक्षेत्र में आगरा, भरतपुर, डीग, अलीगढ़, हाथरस, एटा, कासगंज, मथुरा, वृंदावन, गोवर्धन, गोकुल, महावन, वल्देव आदि स्थान तो इनके गढ़ थे ही, अन्य नगरों में भी पढ़न्त गोष्ठियाँ खूब पल्लवित हुई।''[7]

''हिन्दी जगत में सर्वप्रथम सार्वजनिक कवि-सम्मेलन सन् 1922ई. में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर कानपुर-नगर में आयोजित किया गया। उसकी अध्यक्षता बाबू जगन्नाथदास ''रत्नाकर'' ने की तथा उसके स्वागताध्यक्ष प. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' थे। इस कवि-सम्मेलन में सर्वश्री श्रीधर पाठक रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', दुलारेलाल भार्गव, अभिराम, हितैषी, रूपनारायण पाण्डेय, भगवती चरण वर्मा, गुलाबरत्न बाजपेयी, नन्दकिशोर, वाणी भूषण, चुन्नी गुरु, अनूप शर्मा प्रभृति कवियों ने काव्य-पाठ किया तथा पुरुषोत्तम टण्डन, सरदार नर्वदासिंह, स्वामी नारायणनन्द, ज्योतिप्रसाद भार्गव, शम्भूदयाल गुप्त, चन्दलाल गर्ग तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि प्रमुख विद्वान श्रोता के रूप में सम्मिलित हुए थे। स्व. अनूप शर्मा के काव्य पाठ को इसमें सर्वाधिक सराहा गया था।''[8]

1 अप्रैल 1984 ई. में पं. श्री नारायणजी चतुर्वेदी का एक लेख ''हिन्दी का सबसे पहला कवि-सम्मेलन'' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। जिसमें उन्होंने **हिन्दी का प्रथम कवि-सम्मेलन** विक्रस संवत 1150 तद्नुसार सन् 1815 के ई. में फतहगढ़ के तत्कालीन कलेक्टर श्री ग्राउस द्वारा आयोजित किए जाने की बात कही है। चतुर्वेदी जी के अनुसार – 'श्री ग्राउस हिन्दी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपने कार्य-काल की समाप्ति पर भारत छोड़कर इंग्लैंड प्रस्थान करते समय हिन्दी वालों से विदा लेने के लिए, अपनी ही कोठी पर काव्य-पाठ का एक कार्यक्रम आयोजित किया था तथा उसकी अध्यक्षता भी उन्होंने स्वयं ही की थी। इस कार्यक्रम में भाग लेनेवाले कवियों के लिए उन्होंने एक समस्या भी दी थी जिसकी पूर्ति लगभग 50 कवियों ने की थी। जो पूर्तिकार कार्यक्रम में भाग लेने नहीं आ सके थे, उन्होंने अपनी पूर्तियाँ कलैक्टर साहब के पास भिजवा दी थीं। इस सम्मेलन में सर्वश्रेष्ठ पूर्ति पं. नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' की मानी गई थी तथा उन्हें ग्राउस साहब ने अपने हाथ से एक स्वर्ण-पदक, एक फोटो पुरस्कार के रूप में दिया था। दूसरी सर्वश्रेष्ठ पूर्ति बूंदी की श्रीमती चन्द्रकला की मानी गई जो कि आयोजन में भाग लेने नहीं आईं थीं।'[9]

कतिपय विशिष्ट आमंत्रित श्रोताओं के बीच किसी के निजी आवास पर आयोजित काव्य-पाठ के कार्यक्रमों की गणना 'कवि-गोष्ठि' के अन्तर्गत ही की जाती है। जिस कार्यक्रम में श्रोतागण बिना किसी रोक-टोक के भाग ले सकें तथा जिसमें समस्या पूर्ति की कोई बंदिश भी न हो, सामान्यतः सार्वजनिक 'कवि-सम्मेलन' का नाम उसी को

दिया जाता है। अस्तु चतुर्वेदी जी ग्राउस साहब द्वारा आयोजित कवि–गोष्ठी को "हिन्दी का पहला कवि–सम्मेलन" नाम देकर इस विषय को जिज्ञासुओं को संभवतः अनजाने में ही भ्रमित कर बैठे हैं। उनके लेख का शीर्षक किसी भी स्थिति में उपयुक्त नहीं माना जा सकता।

"सन् 1925 ई. में कानपुर में ही काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दो प्रतिद्वन्दी कवि–सम्मेलन भी आयोजित किए गए जिसमें 'क' वर्ग के नेता सनेहीजी थे। इस प्रकार सार्वजनिक कवि–सम्मेलनों का सूत्रपात सन् 1912ई. में कानपुर नगर से हुआ तथा उसके प्रवर्तक पं. गया प्रसाद "सनेही" बने। बाद में कानपुर में कवि–सम्मेलन आयोजित होने लगे। हिन्दी साहित्य–सम्मेलन के भरतपुर, शिमला, हरिद्वार, नागपुर आदि अधिवेशनों में भी अखिल भारतीय स्तर के कवि–सम्मेलन आयोजित किए गए, जिनके कारण देश के सभी भागों में कवि–सम्मेलनों की लोकप्रियता में अभिवृद्धि हुई। बाद में तो हिन्दी साहित्य–सम्मेलन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा अन्य साहित्यिक सस्थाओं के वार्षिक–अधिवेशनों के अवसर पर भी कवि–सम्मेलन आयोजित करने की एक प्रथा सी बन गई। धीरे–धीरे मेला, प्रदर्शनी आदि में भी कवि–सम्मेलन आयोजित किए जाने लगे। सार्वजनिक हिन्दी कवि–सम्मेलनों के जनक स्व. गयाप्रसाद जी शुक्ल 'सनेही', जी आयु में पं. श्री नारायणजी चतुर्वेदी से 12 वर्ष बड़े थे। अपने जीवन–काल में चतुर्वेदी जी के पारिवारिक – आवास पर अनेक बार पधारे थे तथा उन्होंने स्वयं भी हिन्दी का पहला कवि–सम्मेलन सन् 1922 ई. में स्वयं के द्वारा कानपुर में आयोजित करने की पुष्टि की थी।"[10]

साहित्यिक संस्थाओं के बाद धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं व्यावसायिक संस्थाओं के अधिवेशनों में भी जन–समूह के आकर्षण हेतु कवि–सम्मेलन कराया जाना आवश्यक समझा जाने लगा। बड़े नगरों में होती हुई यह प्रथा धीरे–धीरे छोटे–छोटे कसबों तक फैलती गई। वर्तमान समय में दार्जलिंग से लेकर बम्बई तक तथा श्रीनगर से लेकर मद्रास तक देश के प्रायः सभी भागों में प्रतिवर्ष सहस्रों की संख्या में स्थानीय प्रादेशिक एवं अखिल भारतीय स्तर के कवि–सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं। तथा बड़े–बड़े नगरों में तो एक–वर्ष के भीतर 10–20 तक की संख्या में कवि–सम्मेलनों के आयोजन होते रहते हैं। कवि–सम्मेलनों के इस विकास का प्रमुख कारण खड़ी बोली की सरल तथा उनकी कविताओं में जन–रुचियों तथा जन–समस्याओं को वाणी देनेकी हृदयग्राही क्षमता रही है। मुगल शासन–काल से लेकर अंग्रेजी शासन–काल तक सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में उर्दू का प्रयोग प्रमुख रूप से होता था। अतः उस भाषा के जानकार के लिए उर्दू–मुशाइरे आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बने हुए थे, जबकि जन–साधारण ब्रजभाषा काव्य की ओर अधिक आकर्षित था। खड़ी बोली

की कविता में ब्रजभाषा के लालित्य तथा उर्दू की आत्मा का समीकरण हुआ। अंत में ब्रजभा,ा काव्य-प्रेमी तो इसकी ओर आकर्षित हुए ही उर्दू-शायरी के प्रशंसकों के लिए भी वह अनिन्दनीय बन गई। सरकारी काम-काज की भाषा में हिन्दी का वर्चस्व ज्यों-ज्यों बढ़ने लगा, त्यों-त्यों हिन्दी कविता तथा कवि-सम्मेलनों की भी वृद्धि हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होते ही हिन्दी कवि-सम्मेलन और अधिक लोकप्रिय बन गये। तथा मुशाइरों का रंग फीका पड़ गया।

आरंभ में हिन्दी कवि-सम्मेलन समस्या पूर्तीयों तक ही सीमित रहे। उन दिनों अपनी-अपनी विद्वत्त प्रदर्शित करने के लिए, कभी-कभी मंच पर ही कवियों में आपसी चक-चक हो जाया करती थी और उनमें एक-दूसरे को पछाड़ने की होड़ सी लगी रहती थी। श्रोतागण भी इस स्थिति का भरपूर आनंद उठाते थे, परन्तु बाद में समस्या-पूर्ति का युग समाप्त हो गया तो ये बातें भी आई-गई हो गई। कवि-सम्मेलनों के मंच से विभिन्न विषय रस, छन्द तथा शैलियों की स्वतन्त्र रचनाएँ प्रस्तुत की जाने लगीं। इस परिवर्तन ने भी कवि - सम्मेलनों को अधिक लोकप्रिय बनाया।

कवि-सम्मलनों के विकास में आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। जब तक ध्वनि-विस्तारक यन्त्रों का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक मंच पर काव्य-पाठ करने में केवल वे ही कवि सफल हो पाते थे, जिनका कण्ठ-स्वर तेज था। ध्वनि-विस्तारक यन्त्र के अभाव में कवि अधिक से अधिक दो-चार हजार श्रोताओं तक ही अपनी आवाज को पहुँचा पाता था, अतः प्रारंभिक दिनों में कवि-सम्मेलनों में श्रोता भी अधिक संख्या में एकत्र नहीं होते थे। ध्वनि-विस्तारक यन्त्र तथा विद्युत प्रकाश के आविष्कार के उन्नत कण्ठ-स्वर की आवश्यकता को समाप्त कर दिया। लाउडस्पीकर की सहायता से सामान्य कण्ठ स्वर वाला कवि भी अपनी रचना को लाखों श्रोताओं तक पहुँचाने में समर्थ हो गया तथा विद्युत-प्रकाश ने काव्य-पाठ के समय कवि की भाव-भंगिमाओं को देखने में दर्शक को पर्याप्त सहायता प्रदान की। इस प्रकार कवि-सम्मेलन अपने श्रव्य तथा दृश्य-दोनों रूपों में श्रोताओं एवं दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र बन गया। वर्तमान युग की साज-सज्जा भी उसमें सहयोगी बनी। इन सबके फलस्वरूप कवि-सम्मेलन में बहुसंख्यक जनता रुचि लेने लगी। वर्तमान समय में तो अनेक स्थानों पर ऐसे - ऐसे विशाल कवि-सम्मेलन भी होते हैं, जिनमें श्रोताओं की संख्या पचास-हजार से भी अधिक पहुँच जाती है।

कवि सम्मेलनों को लोकप्रिय बनाने तथा उसके विकास में योगदान देने का सर्वाधिक श्रेय हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के उन कवियों को है, जिनका उद्देश्य उर्दू - मुशाइरों की प्रतिद्वन्दिता में हिन्दी कवि-सम्मेलनों को प्रतिष्ठित करना तथा इस सशक्त माध्यम के द्वारा हिन्दी की अधिकाधिक सेवा करना रहा था। इस संबंध में पं. गया प्रसाद

शुक्ल सनेही का नामोल्लेख पहले ही किया जा चुका है। उन्हीं की पीढ़ी के सर्व श्री माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामनरेश त्रिपाठी, ठा. गोपाल शरण सिंह, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, कुं. हरिश्चन्द्र देववर्मा चातक, तथा पं. नाथूराम शंकर शर्मा शंकर आदि महाकवियों ने हिन्दी कवि सम्मेलनों को लोकप्रिय बनाने में अधिक प्ररिश्रम किया। इन महानुभावों ने जहाँ एक ओर अपनी लेखनी द्वारा माँ भारती के भंडार को भरा वहीं दूसरी ओर देश के विभिन्न भागों में हिन्दी कवि सम्मेलनों को आयोजित करने के लिए काव्य-प्रेमियों को प्रेरित भी किया। उक्त महाकवियों के उन्नायक के रूप में पं. वंशीधर शुक्ल, पं. रामभरोसे लाल पाण्डेय पंकज, वैद्य गजराजसिंह सरोज, सुनहरीलाल पराग, डॉ. आनन्द, शिवमंगल सिंह सुमन, चतुर्भुज दीक्षित चतुरेश, रामचरण मित्र, कुंजबिहारी पाण्डेय, शिशुपाल सिंह शिशु, बलवीर सिंह रंग तथा राजेश दीक्षित के नाम सम्मान-पूर्वक लिए जा सकते हैं।[11]

ये सभी कविगण किसी आर्थिक अथवा वैयक्तिक प्रलोभन के मात्र हिन्दी-सेवा की भावना लेकर ही, देश के विभिन्न भागों में कवि-सम्मेलन आयोजित करने हेतु स्थानीय लोगों को प्रेरित करने हेतु तथा अपने काव्य पाठ द्वारा उन्हें सफल बनाने में प्राणपण से सचेष्ठ बने रहे। आज हिन्दी कवि-सम्मेलनों की जो ममनमोहक हरियाली देश में सर्वत्र फैली दिखाई देती है, उसके लिए सर-भूमि को उर्वरा बनाने में इन्हीं कवियों के कठोर-श्रम का खाद पानी लगा है तथा इन्हीं के कारण आज का हिन्दी काव्य-मंच इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर सका है।

कुछ लोग हिन्दी कवि-सममेलनों को लोकिप्रय बनाने में उन कवियों का भी योगदान मानते हैं जो अपने कण्ठ-स्वर के माधुर्य से श्रोताओं को आकर्षित करने की विशेष क्षमता रखते थे। ऐसे कवियों स्व. गोपालसिंह नेपाली तथा डॉ. हरिवंशराय 'बच्चन' का नाम पहले लिया जाता है, जिन्होंने अपनी 'मधुशाला' तथा श्रृंगारिक गीतों को काव्य-रसिकों के समक्ष स्वर-माधुर्य के साथ प्रस्तुत करते हुए गीतकार के रूप में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। उनके बाद की पीढ़ी में अन्य नाम बलवीर सिंह रंग तथा नीरज का है। यद्यपि बच्चनजी हिन्दी कवि सम्मेलनों के उद्‌भव काल में ही काव्य-मंच पर प्रतिष्ठित हो गये थे, तथापि यह मानने का कोई कारण नहीं है कि अपने कण्ठ-स्वर की मधुरता के बल पर उन्होंने हिन्दी काव्य-मंच को लोकप्रिय बनाने में कोई सहायता पहुँचाई हो। यही बात नेपाली रंग नीरज तथा अन्य गायक-कवियों पर भी लागू होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि न तो सभी कवि-सम्मेलनों में बचानजी अथवा अन्य गायक-कवियों को पहले ही बुलाया जाता था और न वे पहुँच पाते थे, गायक-कवियों की अनुपस्थिति के कारण ही कोई कवि-सम्मेलन असफल हुआ हो, यह भी कभी देखने सुनने में नहीं आया। गायक-कवियों ने अपने स्वर-माधुर्य के बल पर

वैयक्तिक रूप में भले ही कुछ अधिक ख्याति अर्जित कर ली हो, परन्तु कवि–सम्मेलनों के प्रचार–प्रसार अथवा उन्हें लोकप्रिय बनाने में इनका कोई योगदान रहा हो ऐसी बात नहीं है।

''कवि – सम्मेलन के लिए कविता' मुख्य तथा स्वर गौण वस्तु है, यदि दोनों का संयोग हो जाय तो उसे 'सोने में सुहागा' कह सकते हैं। परन्तु सुहागे के अभाव में स्वर्ण का मूल्य कम नहीं होता। कवि – सम्मेलनों में वीर तथा हास्य–रस की कविताएँ तो प्रायः बिना गाये ही पढ़ी जाती हैं। जन–मानस पर उनका प्रभाव भी गेय–गीतों से कम नहीं पड़ता। काव्य–पाठ करनेवाले वीर तथा हास्य–रस के सशक्त–कवि, काव्य–मंच पर अच्छे से अच्छे गायक–कवि को धराशायी भी कर देते हैं। अस्तु, गायन तथा स्वर–माधुर्य का अपना महत्व होते हुए भी उन्हें कवि–सम्मेलन की सफलता के लिए आवश्यक नहीं माना जा सकता।''[12]

''हिन्दी कवि–सम्मेलनों के व्यापक प्रसार के दो काल प्रमुख हैं – (1) सन् 1947 ई. में स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने का समय। (2) सन् 1962 ई. में भारत–चीन युद्ध का समय।''[13]

स्वतंत्रता – पूर्व विदेशी शासन–काल में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर लगाये गये विभिन्न प्रतिबन्धों के कारण कवि की लेखनी तथा वाणी पूर्णरूप से मुखर नहीं हो पाती थी। वह जो कुछ लिखता अथवा कहना चाहता था उसे अधिकतर सांकेतिक भाषा में प्रतीकों के माध्यम से ही लिखता और कहता था। शासन–व्यवस्था का विरोध, अत्याचार, शोषण, उत्पीडन, दरिद्रता, परतन्त्रता, कुरीति आदि विषयों पर लिखते समय उसे तात्कालिक कानूनी सीमाओं का ध्यान भी रखना पड़ता था। स्वतन्त्रता के सूर्योदय के साथ ही ऐसे सभी प्रतिबन्ध समाप्त हो गये, फलतः कवि को लिखने तथा कहने के लिए कई सुविधायें प्राप्त हुईं। इस उन्मुक्त वातावरण का प्रभाव कवि–सम्मेलनों के काव्य–पाठ पर भी पड़ा, जिसके कारण यह आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बन गया।

''सन् 1962 ई. में भारत–चीन युद्ध के समय लगभग 105 वर्ष बाद भारतीय जनता को पहली बार किसी शत्रु से प्रत्यक्ष लोहा लेने का अवसर उपस्थित हुआ उस समय लोगों को जन–जागरण हेतु कवि की वाणी ही सर्वाधिक प्रेरणादायक अनुभव हुई। अतः उस अवधि में ऐसे स्थानों पर भी जहाँ कभी गोष्ठी तक नहीं हुई थी, विशाल कवि–सम्मेलन आयोजित किये गये। इन कवि–सम्मेलनों में रामधारी सिंह 'दिनकर', शिशुपाल सिंह 'शिशु', शिवमंगल सिंह 'सुमन', डॉ. आनंद, राजेश दीक्षित तथा देवराज 'दिनेश' जैसे वीररस के अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त कवियों ने अपनी तेजस्वी वाणी तथा ओजस्वी कविताओं द्वारा देश के जन–मानस में एक नवीन उत्साह बल, स्फूर्ति एवं राष्ट्रीय–चेतना का संचार किया। अन्य कवि भी सामाजिक–रचनायें लिखकर उस काल

के जन–जागरण में सहयोगी बने। इसके कुछ समय बाद ही 'भारत–पाक युद्ध' की विभीषिका उपस्थित हुई। उस समय भी देशभर में व्यापक पैमाने पर कवि–सम्मेलन आयोजित किये गये। द्वितीय 'भारत–पाक युद्ध' के समय भी यही हुआ। इस अवधि में आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों पर भी कवि–सम्मेलनों का और अधिक व्यापक प्रसार हो गया।''[14]

''वर्तमान–काल में कवि–सम्मेलनों के प्रति भारतीय जनता का आकर्षण इतना अधिक बढ़ चुका है कि हिन्दीभाषी क्षेत्रों के अतिरिक्त हैदराबाद, मद्रास, बंगाल, आसाम आदि अहिन्दी प्रदेशों तथा नेपाल, इंग्लेंड, अमेरिका आदि विदेशों में भी हिन्दी कवि–सम्मेलन आयोजित होने लगे हैं। बड़े नगरों के अतिरिक्त छोटे–छोटे कस्बों तथा गाँवों तक में इस हिन्दी काव्य–वृक्ष की जड़ें फैल चुकी हैं।''[15]

आकाशवाणी तथा दूरदर्शन केन्द्रों पर कवि–सम्मेलनों का आयोजन तथा प्रसारण, फिल्मों में कवि–सम्मेलनों के दृश्यों का अंकन तथा पत्र–पत्रिकाओं में कवि–सम्मेलनों की चर्चा – ये घटनायें हिन्दी कवि–सम्मेलन की लोकप्रियता तथा उसके दिनों–दिन बढ़ते प्रचार–प्रसार का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हिन्दी–साहित्य के काल–विभाजन से हिन्दी कवि–सम्मेलनों का सम्बन्ध :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ''हिन्दी साहित्य के इतिहास'' में संवत् 1050 वि. से पूर्व के समय को ''आदिकाल'' मानते हुए हिन्दी–कविता के काल निर्धारित किये हैं –

मंचीय हिन्दी–काव्य की भाषा और शैली :

रीति–काल तक हिन्दी–काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही। ''भारतेन्दु–युग'' में ब्रजभाषा के साथ ही खड़ी बोली में भी काव्य–सृजन का सूत्रपात हुआ परन्तु काव्य की प्रमुख भाषा ब्रजभाषा ही बनी रही। ''द्विवेदी–युग में ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में समान रूप से काव्य–सृजन किया गया परन्तु ''छायावादी–युग'' में खड़ी बोली ही काव्य–सृजन की मुख्य भाषा बन गई। ''प्रगतिवादी–युग'' में सर्वत्र खड़ी बोली का वर्चस्व स्थापित हो गया तथा ब्रजभाषा एक क्षेत्रीय–भाषा के रूप में सिमट कर रह गई। किन्तु काशी, बनारस, आगरा, मथुरा, अलीगढ़, सीतापुर आदि अंचलों में ब्रजभाषा कविता–सृजन की धारा बनके आगे बढ़ रही थी।''

कविवर गोविन्द चतुर्वेदी, महेन्द्रजी, रामलाल, देवी, द्विज, कैलाशचन्द्र कृष्ण, विष्णु विराट, यमुना दत्त प्रीतम, बाल मुकुन्द बाबा आदि श्रेष्ठ कवियों की कविताएँ लोक में ख्याति अर्जित कर रही थीं। वर्तमान समय में खड़ी–बोली के एक हजार कवियों के पीछे ब्रजभाषा का कोई एक कवि ही दिखाई देता है। इसलिए भाषा के आधार पर

मंचीय-काव्य हिन्दी-साहित्य के काल-विभाजन का ही अनुगामी बना रहा है। परन्तु शैली की दृष्टि से मंचीय-हिन्दी काव्य का उक्त काल-विभाजन से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। कारण, ऐतिहासिक दृष्टि से छायावाद-युग के तिरोहित हो जाने पर भी हिन्दी कवि-सम्मेलनों के मंच पर वह आज भी अपनी पूरी गरिमा के साथ प्रतिष्ठित है। इतना ही नहीं, रीति-कालीन शैली का काव्य भी कवि-सम्मेलनों में खूब पसन्द किया जाता है।

''हिन्दी काव्य-मंच के ख्याति प्राप्त गीतकारों में सर्व श्री गोपालसिंह नेपाली से लेकर डॉ. हरिवंशराय 'बच्चन' बलवीर सिंह 'रंग', गोपाल दास 'नीरज', रामअवतार त्यागी, रमानाथ अवस्थी 'पारस', रविन्द्र भ्रमर, भारत भूषण, सोमठाकुर तथा किशन सरोज तक को छायावादी शैली का ही कवि कहा जा सकता है। इन कवियों में से कुछ ने जब प्रयोगवादी अथवा ''नई-कविता'' शैली के गीत लिखकर मंच से सुनाए तो इन्हें पसन्द नहीं किया गया। फलतः इन्हें प्रयोगधर्मी रचनाएँ सुनाना बन्द कर देना पड़ा।''[16]

इसी प्रकार प्रयोगवादी तथा नई-कविता शैली के कवियों को जब-जब कवि-सम्मेलनों के मंच पर काव्य-पाठ के लिए आमंत्रित किया गया, तब-तब वे प्रयाः असफल ही सिद्ध हुए हैं। उक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि छायावादी शैली के गीतकार ही कवि-सम्मेलन के मंच पर सफल होते रहे हैं तथा ''प्रयोगवाद'' ''नई-कविता'' अथवा अन्य किसी वाद विशेष से संबंधित काव्य को हिन्दी कवि-सम्मेलनों का मंच अभी तक आत्मसात् नहीं कर पाया है। यही बात श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों के कवियों पर भी लागू होती है। और तो और आधुनिक हिन्दी कवि-सम्मेलनों के मंच पर रीतिकालीन-शैली में ब्रजभाषा के छन्दों का पाठ करनेवाले रामलाल लला कवि, थानसिंह शर्मा ''सुभाषी'', श्री गोविन्द चतुर्वेदी, श्री श्यामचरण 'श्याम', श्री राजेश दीक्षित तथा श्री सोमठाकुर आदि कवि भी श्रोताओं द्वारा सदैव सम्मानित होते रहे हैं।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दी कवि-सम्मेलनों के मंचीय-इतिहास का हिन्दी काव्य-साहित्य के काल-विभाजन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

स्वातन्त्र्योत्तर कालीन मंचीय हिन्दी कविताओं का स्वरूप :

''15 अगस्त 1947 को अंग्रेजों के चले जाने पर भारत स्वतन्त्र हुआ तथा इसके कुछ समय बाद ही हिन्दी '''राष्ट्रभाषा'' के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हुई फलस्वरूप हिन्दी पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में अभिवृद्धि होने के साथ ही आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से भी हिन्दी कविताओं के प्रसारण तथा कवि-सम्मेलनों के आयोजनों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। हिन्दी काव्य-जगत में नवीन प्रतिभाओं के प्रस्फुटन के साथ ही हिन्दी काव्य-मंच पर अनेक नये कवियों का पदार्पण होने लगा। इन सब के परिणामस्वरूप मंचीय काव्य के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए।''[17]

"सन 1962 ई. में भारत-चीन युद्ध के समय हिन्दी-कवि-सम्मेलनों के इतिहास में एक बड़ा परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। सैकड़ों वर्षो की गुलामी से छुटकारा पाने का बाद देश के समक्ष यह पहला अवसर था जब उसपर एक तथाकथित मित्र तथा शक्तिशाली पड़ोसी देश ने अकल्पित आक्रमण किया था। उस संकट-काल में सभी देशवासी अपने वैचारिक मतभेदों को भुलाकर, राष्ट्र-रक्षार्थ एकजुट हो गये जो लोग शासन के विरोधी थे, उन्होंने भी शसकों के कंधे के साथ अपना कंधा लगा दिया। ऐसे अवसर पर मंचीय हिन्दी कवियों ने भी अपने राष्ट्रीय-कर्तव्य का यथोचित पालन किया। और वे देश की जनता का मनोबल ऊँचा बनाये रखने हेतु अपनी लेखनी में अंगार भरकर शत्रु को ललकारते हुए कवि-सम्मेलनों के मंच पर ओजस्वी काव्य-पाठ रूपी हुंकारें भरने लगे। उस युद्ध के समय देश में पहली बार वीररस के कवि-सम्मेलन विपुल संख्या में आयोजित किए गए, जिनमें वीररस के अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त कवियों शिशुपाल सिंह 'शिशु', डॉ आनन्द तथा राजेश दीक्षित आदि के अतिरिक्त कुछ अन्य रसों के कवियों ने भी ओजस्वी-रचनाओं का पाठ किया।"[18]

इस अवधि में तरुण-पीढ़ी के कुछ ऐसे ओजस्वी कवि भी उभरकर मंच पर आये, जिन्होंने बाद में अल्प समय में ही अखिल भारतीय ख्याति अर्जित कर ली। ऐसी कवियों ने आनन्द मिश्र, ब्रजेन्द्र अवस्थी रामकुमार चतुर्वेदी "चंचल", तथा बालकवि वैरागी के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी अवधि में जिन श्रृंगार तथा हास्य व्यंग्य के ख्यातनामा कवियों ने ओजस्वी रचनाएँ भी लिखीं। उनमें सर्वश्री नीरज, देवराज 'दिनेश' तथा वीरेन्द्र मिश्र के नाम प्रमुख हैं। अन्य मंचीय कवियों में से अधिकांश लोग अपना पुराना राग ही अलापते रहे।

"सन् 1965 ई. से 1971 ई. तक की अवधि में दो बार भारत-पाक युद्ध हुए। अतः उस काल में भी कवि-सम्मेलनों के मंच पर वीररस के कवियों का ही प्राधान्य रहा। श्रृंगारी कवि द्वितीय तथा हास्य-व्यंग्य के कवि तृतीय स्थान पर बने रहे। सन् 1971 ई. से 1975 ई. तक मंचीय हिन्दी काव्य व्यवसायिकता एवं गुटबन्दी के कारण साहित्यिक दृष्टि से सोचनीय तथा निम्न-स्तर की रचनाओं का रहा। यद्यपि इनका हिन्दी काव्य-मंच पर प्रवेश सन् 1947 ई. से ही आरम्भ हो गया था परन्तु सन् 1970 ई. के बाद ये बुराइयाँ अपने कुत्सित रूप में प्रकट होने लगी। सन् 1962 ई. के बाद मंच पर पर्दा डालने के उद्देश्य से फूहड़ चुटकुलेबाजी तथा अश्लीलता की सीमा को भी पार कर जानेवाली तथाकथित रचनाओं को मंचीय-काव्य के रूप में प्रस्तुत कर काव्य श्रोताओं की साहित्यिक-रुचि को विकृत करना आरंभ कर दिया। अपने छलछन्दों के बल पर ऐसे तथाकथित कवि सच्चे कवियों की तुलना में आर्थिक दृष्टि से लाभान्वित भी खूब हुए, क्योंकि भौंड़ेपन के अधिकाधिक प्रदर्शन के कारण असाहित्यिक

एवं बौद्धिक दृष्टि से दरिद्र श्रोताओं में उनकी माँग बहुत बढ़ गई। जिसके कारण उन्हें यथार्थ कवियों की तुलना में कहीं अधिक पारिश्रमिक देकर अधिक स्थानों पर आमन्त्रित किया जाने लगा। ऐसे कवियों के कारण जिस अनुपात में असाहित्यिक एवं निम्न बौद्धिक स्तरीय श्रोताओं की संख्या में वृद्धि हुई, उससे भी अधिक अनुपात में साहित्यिक रुचि के श्रोता कवि-सम्मेलन से दूर हटते चले गये। इस प्रकार उक्त अवधि में हिन्दी कवि-सम्मेलन अपनी साहित्यिक-प्रतिष्ठा को खोकर असाहित्यिक एवं सस्ते मनोरंजन के केन्द्र बनकर रह गये।''[19]

सन् 1975 ई. से 1977 ई. तक देश में 'आपात-कालीन कानून' लागू रहा। अतः इस अवधि में हिन्दी काव्य मंच के राष्ट्रीय-रचनाकार सर्वाधिक संत्रस्त रहे। कारण अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित कर दिये जाने से वो अपने राष्ट्र तथा समाज में जो कुछ देख-सुन तथा अनुभव कर रहे थे उसे अपनी लेखनी तथा वाणी द्वारा व्यक्त न करने को बाध्य कर दिये गये थे। अतः इस अवधि में जो कवि-सम्मेलन आयोजित हुए उनमें अधिकांश मंचीय कवियों ने या तो शासक की प्रशंसा में काव्य-पाठ किया अथवा फिर राजनीति से भिन्न-विषयों की कविताएँ पढ़ी जाती रही। सर्वश्री नागार्जुन तथा राजेश दीक्षित जैसे एकाध निर्भीक कवि ही ऐसे थे, जिन्होंने उक्त समय में भी जन-भावनाओं को प्रकट करनेवाले रचनाओं का पाठकर अपने कवि-धर्म का यथोचित पालन किया तथा इसी कारण इन्हें विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का शिकार भी बनना पड़ा।[20]

''सन 1977 ईं से बाद का समय राजनीतिक उथल-पुथल के कारण एक संक्रान्ति काल जैसा रहा। इस अवधि में बिगत तीस वर्षों से चले आ रहे कांग्रेसी शासन की समाप्ति हुई तथा लगभग ढाई वर्ष तक विपक्षी दल सत्ता के आसन पर आरूढ़ रहे। इस सत्ता परिवर्तन के समय हिन्दी काव्य-मंच के राष्ट्रीय रचनाकारों ने देश के जन-जीवन में सुखद-परिवर्तन आने की जो आशाएँ की थीं, वे फलीभूत नहीं हो सकीं तथा सन् 1980 ई. में कांग्रेस पुनः सत्तारूढ़ हो गई।''[21]

वर्तमान समय में हिन्दी काव्य मंच का राष्ट्रीय रचनाकार जैसे किकर्तव्य विमूढ़ता की स्थिति में दिखाई दे रहा है कि अब उसे क्या लिखना चाहिए। इसके विपरीत श्रृंगारी कवि अपने पुराने ढर्रे पर ही चल रहे हैं तथा हास्य-रस के कवि अधिकाधिक फूहड़ता फैलाने में प्रयत्नशील हैं।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योगदान :

''भारतेन्दु-युग (सन्1968-1903 ई.) के कवि में स्वयं भारतेन्दु जी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की इस उपेक्षा को बड़ी गहराई से अनुभव किया था तथा देशवासियों को संबोधित करते हुए कहा था -

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल।
निज भाषा के ज्ञान बिन, मिटंत है हिय कौ सूल।।

इसी प्रकार पं. श्रीधर पाठक, मैथिलीशारण गुप्त जैसे कवियों ने भी हिन्दी की दुर्दशा पर आँसू बहाये थे तथा हिन्दी की उन्नति के लिए देशवासियों का आव्हाहन किया था।''[22]

''जिस प्रकार आधुनिक काल में हिन्दी की फिल्में भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार की एक सबल माधायम सिद्ध हुई है उसी प्रकार भारतेन्दु काल की कवि गोष्ठियों से लेकर वर्तमान समय तक के कवि-सम्मेलनों ने भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्णता भूमिका अदा की है। कवि-सम्मेलनों में श्रोताओं के रूप में भाग लेनेवाले हजारों अहिन्दी-भाषी लोग उनमें पढ़ी जानेवाली रचनाों को सुन-सुन कर हिन्दी-भाषा के अध्ययन की ओर आकर्षित हुए हैं। इतना ही नहीं अहिन्दी भाषियों ने स्वयं भी हिन्दी में काव्य-सृजन की चेष्टा की है। अस्तु, हिन्दी के प्रचार-प्रसार में कवि-सम्मेलनों का भी विशेष योगदान रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।''[23]

संस्कृति-संरक्षण कुरीति-निरवारण सामाजिक क्रान्ति, स्वतन्त्रता-संग्राम जन-जागरण में योगदान :

''हिन्दी कवि-सम्मेलनों ने संस्कृति-संरक्षण कुरीति-निवारण, स्वतंत्रता संग्राम सामाजिक-क्रान्ति तथा जन-जागरण में भी अपना योगदान किया है क्योंकि इन सभी विषयों पर प्रायः सभी प्रमुख मंचीय-कवियों ने कविताएँ लिखी हैं तथा उनके माध्यम से लाखों श्रोताओं के हृदयों को आन्दोलित किया है। पुरानी पीढ़ी के ऐसे मंचीय-रचनाकारों में सर्वश्री पं. श्रीधर पाठक, पं. नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर', श्री सत्यनारायण, कवि रत्न, पं. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', श्री सोहनलाल द्विवेदी तथा जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द', श्री लाल चतुर्वेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।''[24]

संस्कृति-संरक्षण :

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने देशवासियों के समक्ष प्राचीन भारतीय-संस्कृति का चित्र खींचते हुए वर्तमान-दुर्दशा का वर्णन यहाँ पर किया है –

''अंकित है इतिहास पत्थरों पर जिनके अभियानों का
चरम-चरण पर चिह्न यहाँ मिलता जिनके बलिदानों का,
गुंजित जिनके विजय-नाद से, हवा आज भी बोल रही,
जिनके पदाघात से कम्पित धरा अभी तक डोल रही।''[25]

कुरीति-निवारण :

समाज में फैली विभिन्न कुरीतियों के विरोध में भी अनेक कवियों ने अपनी लेखनी

उठाई। उदाहरण के लिए 'दहेज' की कुप्रथा के विरोध में पं. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' रचित इन पंक्तियों को देखिये –

"पत्थर से दिल हुए हमारे नहीं पिघलते,
कन्याएं थक रहीं आग मे जलते–जलते,
शुष्क हृदय है हाय ! अश्रु भी नहीं निकलते,
हम ऐसे खल–हुए नहीं ऐसे दुःख खलते।"[26]

सामाजिक–क्रान्ति :

पं. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने अपनी 'अछूत' शीर्षक रचना में छूआछूत को निम्नलिखित शब्दों में फटकार लगाई थी।

"एक ही विधाता के अमृत–पुत्र एक देश,
कुछ यों अपूत, कुछ पूत कैसे हो गये ?
सबकी नसों में रक्त एक ही प्रवाहित है,
कुछ देव–दूप कुछ भूत कैसे हो गये,
जाने क्या समाई धुन–भारत–निवासियों को,
होके ब्रह्मज्ञानी, अवधूत कैसे हो गये ?
बन्धु श्री वशिष्ट व्यास विदुर पराशर के,
वाल्मीकि–वंशज अछूत कैसे हो गये?"

देश के सभी धर्मावलम्बी एक ही भारतीय–समाज के अंग हैं – श्रीधर पाठक की निम्नलिखित पंकक्तियों में यह बात स्पष्ट की गई है –

"हिन्दू–मुसलमान, ईसाई,
बौद्ध, पारसी, जैनी भाई,
मन्दिर, मूरत, तीरथ, मस्जिद,
मक्का, प्राग, हज, गुरुद्वारा,
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा।"

पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" की "दान" शीर्षक कविता में भिखरी का एक चित्र इस प्रकार खींचा गया है –

"अति क्षीण कंठ है, तीव्र स्वास,
जीता ज्यों जीवन से उदास।
ढोता जो वह, कौन–सा शाप?
भोगता कठिन – कौन–सा पाप ?"[27]

स्वतंत्रता – संग्राम :

स्वतंत्रता–प्राप्ति के हेतु हिन्दी कवियों ने जितनी प्रेरणादायक कविताएं लिखीं और उनका जन–मानस पर जितना जादुई–प्रभाव पड़ा, उसके विषय में जितना भी लिखा जाय कम है। यहाँ हम मंचीय–कवियों की कविताओं की कुछ ऐसी पंक्तियॉ उद्धृत कर रहे हैं, जिन्होंने लाखों देशवासियों को स्वातन्त्र्य युद्ध में भाग लेने के लिए प्रेरित किया था।

पं. माखनलाल चतुर्वेदी ''एक भारतीय आत्मा की'', ''फूल की चाह'' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी–माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि ! डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना वनमाली ! उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश–चढ़ाने जिस पथ जाएं वीर अनेक।[28]

जन जागरण :

जन–जागरण की दिशा में हिन्दी के मंचीय–कवियों की निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं – पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी ''निराला' ने ''जागो फिर एक बार'' शीर्षक कविता में लिखा था –

''तुम हो महान
तुम हो सदा महान
है नरवर यह दीन–भाव
कायरता काम–परता
ब्रह्म हो तुम
पद–रज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व–भार
जागो फिर एक बार।''[29]

स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी हिन्दी के मंचीय कवि ऐसे सभी विषयों पर कविताएँ लिखकर हिन्दी के प्रचार–प्रसार, संस्कृति–संरक्षण, कुरीति–निवारण, सामाजिक क्रांति तथा जन जागरण आदि के क्षेत्रों में अपना साहित्यिक योगदान करते चले आ रहे हैं। ऐसे कवियों में सर्वश्री नागार्जुन, राजेश दीक्षित, रायबहादुर ''विकल'' दामोदर स्वरूप ''विद्रोही''

मुकुट विहारी सरोज तथा धन्नपाल अवस्थी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वतन्त्र-अभिव्यक्ति एवं बौद्धिक मनोरंजन में योगदान :

स्वतन्त्र - अभिव्यक्ति :

स्वन्तन्त्रता के सूर्योदय के बाद जब भारतीय संविधान में विचारों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दे दी गई तो उसके फलस्वरूप मंचीय हिन्दी-कविता ने नए युग में प्रवेश किया। स्वातन्त्र्योत्तर काल में हिन्दी की जो युवा-पीढ़ी, राष्ट्रीय-रचनाकार के रूप में मंच पर प्रतिष्ठित हुई, उनसे संविधान द्वारा प्रदत वैचारिक - अभिव्यक्ति का लाभ उठाकर अपनी कविताओं को एक सर्वाधिक नवीन परिवेश में प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया। वह शासन की त्रुटियों तथा राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय, सामाजिक एवं सामयिक घटनाओं के सन्दर्भ में अपने विचारों को कविता के माध्यम से खुलकर प्रकट करने लगे। अतः उसकी मंचीय-कविताओं में ''लक्षणा'' तथा ''व्यंजना'' के स्थान पर ''अभिधा'' को प्रधानता मिली। इस शैली के प्रमुख रचनाकारों में श्री राजेश दीक्षित का नाम गण्य है।

''श्री राजेश दीक्षित सन् 1942 ई. से ही राष्ट्रीय रचनाकार के रूपमें हिन्दी काव्य मंच पर अखिल भारतीय ख्याति अर्जित कर चुके थे तथा तत्कालीन परिस्थितियों में वे भी अपने पूर्ववर्ती कवियों के अनुगामी बने हुए थे। परन्तु सन् 1945 ई. से उन्होंने अपनी लेखनी को एक नया मोड़ देना आरम्भ कर दिया तथा सम-सामयिक सामाजिक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर अभिधा प्रधान मंचीय कविताएं लिखने का सूत्रपात किया। उनकी ऐसी रचनाओं के प्रारम्भ में ''काव्यात्मक भाषण'' अथवा ''भाषणात्मक काव्य की संज्ञाएं भी दी गई, परन्तु अल्पकाल में ही उनकी यह नवीन मंचीय काव्य शैली इतनी अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई कि अनेक समकालीन तथा परवर्ती मंचीय कवियों ने भी उसे बड़ी तेजी से अपनाया। इस प्रकार एक राजेश-स्कूल की भी स्थापना हो गई। ''राजेश शैली'' के स्वातन्त्र्योत्तर कालीन प्रमुख मंचीय कवियों में सर्व श्री ब्रजेन्द्र अवस्थी, दामोदर स्वरूप ''विद्रोही'' आनन्द मिश्र तथा उदय प्रताप सिंह आदि के नाम लिए जा सकते हैं। आगे चलकर यह शैली और भी अधिक विकसित हुई, अनेक मंचीय राष्ट्रीय-रचनाकार इस शैली में काव्य सृजन तथा काव्य-पाठ करते दिखाई देते हैं।''[30]

कथित आकांक्षाओं की पूर्ति न हो पाने के कारण सन् 1150 ई. से ही स्वदेशी-शासन के विरुद्ध जन-भावनाएँ आक्रोश का रूप धारण करने लगी थी। समय बीतने के साथ ही वे और अधिक पुष्ट होती चली गई। इस अवधि में हिन्दी-मंच के जिन राष्ट्रीय रचनाकारों ने अपनी सामयिक कविताओं के माध्यम से उन्हें खुलकर अभिव्यक्ति प्रदान की उनमें सर्वश्री वंशीधर शुक्ल, डॉ. आनन्द, शिशुपाल सिंह 'शिशु', नागार्जुन तथा राजेश दीक्षित के नाम उल्लेखनीय हैं। इनसे बाद वाली पीढ़ी के कुछ कवि भी इस

दिशा में अग्रसर हुए।

"भारत-चीन युद्ध तथा भारत-पाक युद्धों के समय हिन्दी कवि सम्मेलनों की उपयोगिता तथा प्रभाव को सम्पूर्ण देश में विशेष रूप अनुभव किया गया। उस समय हिन्दी काव्य मंच के राष्ट्रीय-रचनाकारों ने अपनी ओजस्वी कविताओं के माध्यम से न केवल देशवासियों की ठंडी-धर्मनयों में उष्ण-खत का संचार ही किया अपितु उन्हें राष्ट्र -रक्षार्थ तन-मन-धन तथा सर्वस्व समर्पण के हेतु प्रेरित भी किया। उन दिनों देशभर के सहस्रों की संख्या में वीररस प्रधान राष्ट्रीय रचनाकारों ने शासन से अपने समस्त मतभेद भुलाकर भारतीय जनता में राष्ट्र-भक्ति की भावना जाग्रत की तथा राष्ट्रीय-सुरक्षा कोष में लाखों रुपयों की अभिवृद्धि कराने में योगदान किया।"[31]

इसी भाँति देश के विभिन्न भागों में जब कभी बाढ़, सूखा आदि प्राकृतिक विपत्ति की घटनाएं घटी उस समय पीड़ितों की सहायतार्थ आयोजित किये जानेवाले कवि-सम्मेलन भी अपने उद्देश्य में सफल होते रहे हैं।

"सन् 1975 ई. के उत्तारार्द्ध में जब देश में "आपात-कालीन स्थिति" लागू की गई तथा उसके अन्तर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबन्धित कर दिया गया। उन दिनों में भी सर्वश्री नागार्जुन तथा राजेश दीक्षित आदि कतिपय राष्ट्रीय, रचनाकारों ने अपने कवि धर्म का निर्भयतां पूर्वक पालन किया था और जन-भावनाओं की निरन्तर अभिव्यक्ति प्रदान करते रहे थे।"[32]

"सन् 1977 ई. के सत्ता-परिवर्तन के युग में भी हिन्दी काव्य मंच के राष्ट्रीय रचनाकारों ने अपनी महत्वपूर्ण साहित्यिक - भूमिका अदा की तदुपरान्त सत्तारूढ़-दल की आन्तरिक-कलह को उजागर करने तथा उसके प्रति जन-आक्रोश को व्यक्त करने में भी वे पीछे नहीं रहे। वर्तमान मे भी वे अपनी राष्ट्रीय कवि धर्म का निर्वहन करने में सचेष्ट बने हुए हैं।"[33]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जन-भावना की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति में हिन्दी के मंचीय कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहता चला आया है।

बौद्धिक - मनोरंजन में योगदान :

हिन्दी काव्य मंच के राष्ट्रीय-रचनाकार जहाँ चिन्तन प्रदान कविताएँ लिखकर उनके माध्यम से श्रोताओं के मन, मस्तिष्क को झकझोरने तथा उन्हें राष्ट्र तथा समाज के प्रति कर्तव्य-पालन हेतु प्रेरित करते हैं, वही शृंगारी गीतकार तथा हास्य-व्यंग्य के कवि उन्हें बौद्धिक मनोरंजन प्रदान कर आल्हादित करने का कार्य भी कर रहे हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर - काल में हिन्दी - काव्य मंच पर ऐसी मनोरंजक तथा आल्हादकारी कविताओं का प्रचलन कुछ अधिक ही बढ़ा है, जिसका कारण इस प्रकार माना जा सकता है।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY The M.S. University of Baroda

राष्ट्र – चिन्तन की दुरुहता :

"राष्ट्र–चिन्तन परक कवितायें लिखना अधिक दुष्कर कार्य होता है। इसके लिए विशद् अध्ययन, घटनाओं का समुचित ज्ञान, समाज के विभिन्न–वर्गो से नैकट्य, सूक्ष्म–दृष्टि तथा निस्पक्ष विवेचक बुद्धि आदि अनेक गुणों की आवश्यकता होती है। सामान्य कवि के लिए यह सब कर पाना बहुत कठिन प्रतीत होता है। फिर, ऐसी रचनाओं का प्रभाव राजनीतिक, कारणों से एक पक्ष के निजी–जीवन पर भी पड़ता है। अतः सुविधा भोगी कवि इन सब जटिलताओं में फँसने की उपेक्षा उस सहज – मार्ग को अपनाना अधिक पसंद करते हैं, जिससे धन–मान आदि की सरलतापूर्वक उपलब्धि हो सके श्रम भी कम करना पड़े। अस्तु, वर्तमान–युग में राष्ट्र–चिन्तक कवियों की संख्या में जहाँ निरन्तर ह्रास हो रहा है। वहाँ सुविधाभोगी कवियों की संख्या बढ़ती चली जा रही है।"[34]

राजनीतिज्ञों द्वारा उपेक्षा :

"आजादी का मुख्य लक्ष्य प्राप्त हो जाने के बाद देश की जनता ने रामराज्य की जो सुखद कल्पना की थी वह साकार नहीं हुई। देश की राजनीतिक परिस्थितियों में ऐसे मोड़ आते रहे जिनके कारण बहुसंख्यक देशवासी राजनीतिज्ञों के प्रति अनास्थावान् होते चले गये। उन्हें यह भी अनुभव होने लगा कि "वर्तमानकालीन शासक अथवा विरोध पक्ष के पेशेवर राजनीतिज्ञों द्वारा देश की स्थिति में सुधार की आशा कर पाना व्यर्थ है, क्योंकि वे सभी देश–सेवा की आड़ में निज स्वार्थों को ही सर्वोपरि महत्व दे उठे हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय रचनाकार कवि कुछ भी क्यों न कहें, आधुनिक राजनीतिज्ञों के मन पर उसका किंचित् प्रभाव नहीं पड़ेगा। क्योंकि उनकी दृष्टि में कवि और उसके कथन का अब कोई महत्व नहीं रह गया है। इस पलायनवादी मनोवृत्ति ने राष्ट्रीय रचनाओं की तुलना में श्रृंगारी–गीत तथा हास्य–व्यंग्य की रचनाओं को विशेष स्थान दिया है।"[35]

आत्म – प्रर्वचना :

"जीवन के अभाव संत्रास बेकारी–बेरोजगारी, महंगाई तथा भुखमरी आदि से पीड़ित देश का निम्न तथा मध्यम वर्ग अपने मन पर चिन्ताओं का भार न डालकर आत्म–प्रवंचना द्वारा क्षणिक–शान्ति पाने को लालायित हो उठा है। ठीक उसी प्रकार जैसे कि कुछ लोग अपना गम–गलत करने के लिए शराब पी लिया करते हैं। ऐसे लोग कवि–सम्मेलनों में राष्ट्रीय रचनाएँ सुनकर अपने मन–मस्तिष्क को राष्ट्र–चिन्तन के बोझ से बोझिल होने देने की अपेक्षा श्रृंगारी–गीत तथा हास्य व्यंग्य की रचनाओं में रस लेकर उसे बहलाने अथवा भुलावे में डालने की ही अधिक चेष्टा करते हैं। बहुसंख्यक श्रोताओं की यह मनःस्थिति भी राष्ट्रीय–रचनाओं के प्रति उदासीनता का कारण बनी है।"[36]

बौद्धिक–मनोरंजन का यदि साहित्यिक स्वरूप बना रहे तो वह शोभनीय होता है,

परन्तु यदि वह 'विदूपता' का रूप ग्रहण कर ले तो राष्ट्रीय हित की दृष्टि से चिन्ताजनक स्थिति बनती हैं। सन्तोष की बात है कि हिन्दी मंच के अधिकांश श्रृंगारी कवि साहित्यिक सीमा के भीतर ही चल रहे हैं और वे अपनी रचनाओं के माध्यम से काव्य रसिकों को उत्तम कोटि का बौद्धि-मनोरंजन प्रदान कर रहे है। ऐसे कवियों में सर्वश्री बलवीर सिंह 'रंग', गोपालदास 'नीरज', रामावतार त्यागी, रामनाथ अवस्थी, भारतभूषण तथा सोम ठाकुर आदि के नाम प्रमुख हैं। परन्तु स्वातन्त्र्योत्तर काल में हास्य-व्यंग्य के कवि के रूप में जिस नवीन पीढ़ी का मंचोदय हुआ है। उनमें सर्वश्री विश्वनाथ 'विमलेश', कवि कुल्हड़, माणिक वर्मा, ओम प्रकाश आदित्य तथा अशोक चक्रधर जैसे कतिपय कवियों को छोड़कर अधिकांश ऐसे हैं, जिनकी रचनायें विद्रूप, वीभत्सता, नैतिकता एवं अश्लीलता की सीमाओं को भी पार कर रही हैं। 'साहित्यिकता' के तो उनमें कहीं दर्शन भी नहीं होते। प्रसन्नता का विषय है कि जागरुक काव्य श्रोता ऐसी विद्रूप रचनाकारों को अब हेय दृष्टि से भी देखने लगे हैं।[37]

अस्तु, हिन्दी कवि-सम्मेलन बौद्धिक मनोरंजन का भी साधन हैं तथा उसने सार्वजनिक मनोरंजन के प्राचीन साधनों - नौटंकी, स्वांग, भगत, भड़ैती आदि की तुलना में जन-साधारण की रुचि को कहीं अधिक परिष्कृत भी किया है।

उक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी कवि - सम्मेलनों का हिन्दी के प्रचार-प्रसार के अतिरिक्त संस्कृत-संरक्षण, कुरीति-निवारण, सामाजिक-क्रान्ति स्वतन्त्रता संग्राम तथा जन-जागरण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा वर्तमानकाल में वे स्वतन्त्र अभिव्यक्ति तथा बौद्धिक-मनोरंजन में भी. अपनी प्रभुख भूमिका निभा रहे हैं।

कवि सम्मेलनों की व्यवस्था और प्रबंधन :

मेला प्रदर्शनी तथा संस्थाओं के वार्षिकोत्सवों के अवसर पर आयोजित किए जानेवाले कवि-सम्मेलन प्रायः पाण्डाल बनाकर किये जाते हैं। इनमें एक ओर लगभग 5 फुट ऊँचा मंच बनाया जाता है। जिसपर कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष, उद्घाटनकर्ता, संयोजक तथा विशिष्ट-अतिथि बैठते हैं। मंच के सामने तथा दाएँ-बाएँ श्रोताओं के बैठने का स्थान होता है। श्रोताओं के बैठने की व्यवस्था आयोजकों की सुविधा तथा श्रोताओं की संख्या के आधार पर जमीन, फर्श अथवा कुर्सियों आदि पर की जाती है। बैठने की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि सभी श्रोता मंच से काव्य-पाठ करनेवाले कवि भाव-भंगिमाओं को भी भली-भाँति देख सकें तथा काव्य-पाठ करने वाले कवि की दृष्टि भी अधिकांश श्रोताओं पर पड़ सके।[38]

जहाँ श्रोताओं की संख्या सीमित होती है वहाँ कवि-सम्मेलन का आयोजन किसी छोटे-बड़े हॉल में भी कर लिया जाता है। ऑडिटोरियम तथा सिनेमाघरों के हॉल भी अब इस कार्य में प्रयुक्त होने लगे हैं। श्रोताओं की विपुल संख्या तक कवि के कण्ठ-

स्वर को पहुँचाने के लिए बिजली, गैस के हण्डे आदि की समुचित व्यवस्था की जाती है। कवि–सम्मेलनों का आयोजन प्रायः रात्रि में ही किया जाता है, परन्तु कभी–कभी इन्हें दिन में भी आयोजित कर लिया जाता है। कवि–सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए किसी वरिष्ठ कवि अथवा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति का निर्वाचन किया जाता है। इस निर्वाचन की घोषणा बहुत दिनों पहले अथवा काव्य–पाठ आरंभ होने से पूर्व ही कर दी जाती है। अध्यक्ष द्वारा अपना आसन ग्रहण करने के बाद यदि किन्ही विशिष्ट महानुभाव को कवि–सम्मेलन का उद्घाटन करने के लिए आमंत्रित किया हो तो उनका परिचय देते हुए संयोजक उन्हें उद्घाटन–भाषण देने के लिए भी आमंत्रित करता है। उद्घाटन–भाषण के पश्चात् अथवा अध्यक्ष का निर्वाचन होने के बाद अध्यक्ष महोदय द्वारा आभार–प्रदर्शन के निमित्त दो शब्द कहने की प्रथा है परन्तु कुछ कवि–सम्मेलनों में अध्यक्षीय भाषण कवि–सम्मेलन की समाप्ति पर ही होता है। अध्यक्ष महोदय यदि स्वयं भी कवि हो तो उन्हें काव्य–पाठ का प्रथम–चक्र पूरा होने के बाद अथवा सबके अन्त में कविता पढ़ने के लिए आमंत्रित किया जाता है। यदि उद्घाटनकर्ता भी कवि हो तो वे भी अध्यक्ष महोदय से पूर्व अपनी रचना का पाठ करते हैं। यदि किन्हीं विशिष्ट महानुभाव को मुख्य–अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया हो तो वे भी उद्घाटनकर्ता के बाद ही कवि–सम्मेलन के श्रोताओं को सम्बोधित करते हैं।

संयोजक द्वारा श्रोताओं को कवि–सम्मेलन में भाग लेनेवाले कवियों का परिचय दिया जाता है तथा स्वागताध्यक्ष आदि पदाधिकारी माला आदि पहनाकर अध्यक्ष, उद्घाटनकर्ता, मुख्य–अतिथि एवं कवियों का स्वागत करते हैं। इन औपचारिकताओं के बाद कवि–सम्मेलन में काव्य–पाठ आरम्भ होता है। सर्वप्रथम 'वाणी–वन्दना' करने का नियम है। फिर पहले नई पीढ़ी के कवियों को काव्य–पाठ के लिए आमंत्रित किया जाता है। बाद में क्रमशः पुरानी पीढ़ी के कवि आमन्त्रित किये जाते हैं। यहाँ पीढ़ी से तात्पर्य नवयुवक कवियों से न होकर उन कवियों से है, जिनकी काव्य–प्रतिभा सामान्य कोटि की मानी जाती है। तत्पश्चात् उत्तरोत्तर श्रेष्ठ काव्य–पाठ करने वाले कवियों को आमन्त्रित किया जाता है। जो कवि किसी समय अपने काव्य–पाठके लिए विशेष प्रसिद्ध रहे हों, परन्तु वर्तमान में वृद्धावस्था अथवा अन्य कारणों से अधिक आकर्षक ढंग से काव्य–पाठ न कर पाते हों उन्हें भी वरिष्ठक्रम से बाद में ही आमंत्रित किया जाता है। काव्य–जगत के कोई विशिष्ट–ख्याति प्राप्त अमंचीय कवि यदि संयोगवश अथवा विशेष आमंत्रण पर कवि–सममेलन में उपस्थित हों तो उन्हें भी बाद में ही रचना–पाठ के लिए आमंत्रित करने की शिष्टता प्रदर्शित की जाती है। इसी प्रकार कवि–सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहे कवि को भी अन्य सब कवियों के अन्त में काव्य–पाठ के लिए आमंत्रित किया जाता है। परन्तु कभी–कभी वरिष्ठता के इस क्रम में जानबूझ कर ढील भी दे दी जाती हैं। अनेक

अवसरों पर ऐसा भी होता है। जब सामान्य कवियों की रचनाओं को सुनते-सुनते श्रोतागण ऊबने लगते हैं और वे काव्य-पाठ हेतु किसी प्रभावोत्पादक कवि की मांग कर उठते हैं, उस समय कवि-सम्मेलन का संचालक वरिष्ठताक्रम को भंग करके तत्कालीन वातावरण को नियन्त्रित किसी वरिष्ठ अथवा प्रभावशाली कवि के नाम की उद्घोषणा बीच में ही कर देता है। इस प्रकार श्रोताओं की रुचि एवं कवि-सम्मेलन की सफलता हेतु विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही काव्य-पाठ हेतु कवियों का क्रम निर्धारित किया जाता है। कभी-कभी जिन कवियों को श्रोताओं द्वारा अधिक सराहा जाता है, उन्हें क्रम से हटाकर बीच-बीच में अनेक बार काव्य-पाठ के लिए प्रस्तुत करने की आवश्यकता भी पड़ जाया करती है।

कवि-सम्मेलन का प्रारम्भ किसी कवि से हो तथा बाद में अन्य कवि किस क्रम से अपनी रचनाओं का पाठ करे - इसका निश्चय कवि-सम्मेलन के ''संचालक'' को करना होता है। प्रत्येक कवि-सम्मेलन में जो व्यक्ति एक के बाद दूसरे कवि को काव्य-पाठ के लिए आमंत्रित करता है, उसे 'संचालक' अथवा 'संयोजक' कहते हैं। संचालक का दायित्व प्रायः किसी कवि को ही सौंपा जाता है, परन्तु कहीं-कहीं कवि से इतर व्यक्ति भी कवि-सम्मेलन का संचालन करते हैं। मध्यप्रदेश आदि कुछ स्थानों में कवि-सम्मेलन का संचालन करने के लिए बाहर से किन्ही ऐसे व्यक्तियों को भी बुलाया जाता है, जो कवि न होते हुए भी मंच-संचालन की कला में दक्ष होते हैं। कहीं-कहीं प्रतिवर्ष आयोजित होनेवाले कवि-सम्मेलन के 'स्थायी संचालक' भी देखने को मिलते हैं तो कहीं-कहीं प्रतिवर्ष बदलते भी रहते हैं।

कवि-सम्मेलन की सफलता के लिए ध्वनि-व्यवस्था पर समुचित ध्यान दिया जाना आवश्यक है। लाउडस्पीकर इस प्रकार और इतनी संख्या में लगाए जाने चाहिए कि उनके माध्यम से सर्वत्र एक सी आवाज सुनाई दे सके। केवल श्रोताओं को ही नहीं, अपितु मंच पर उपस्थित काव्य-पाठ करने वाले कवियों को भी अपनी आवाज ठीक से सुनाई दे - इसका रखना भी आवश्यक है।

कवि - सम्मेलन की सफलता के लिए समुचित प्रकाश-व्यवस्था भी आवश्यक है। कवियों के बैठने के स्थान अर्थात् मंच पर प्रकाश की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि वहाँ उपस्थित सभी व्यक्तियों, विशेषकर माइक पर काव्य-पाठ करनेवाले कवि की भाव-भंगिमाओं को श्रोता एवं दर्शकगण स्पष्ट रूप में देख सके। श्रोताओं के बैठने के स्थान में ऐसी प्रकाश-व्यवस्था रहनी चाहिए, जिससे कि काव्य-पाठ करनेवाला कवि उनकी प्रतिक्रिया को भलीभांति अनुभव कर सके।

कवियों तथा श्रोताओं के बैठने की व्यवस्था पर भी समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। मंच पर जितने कवि तथा अन्य लोगों को बैठाना हो, उसे उसी अनुपात में

छोटा–बड़ा बनाया जाना चाहिए। मंच पर केवल काव्य–पाठ से सम्बन्धित लोगों को ही बैठने देना चाहिए और वह इतना बड़ा भी होना चाहिए कि उसपर सब लोग आराम से बैठ सकें । इसी प्रकार श्रोताओं के बैठने की भी उचित व्यवस्था करना आवश्यक है। महिलाओं, विशिष्ट श्रोताओं, व्यस्कों तथा बच्चों को बैठने के लिए अलग–अलग कक्षों का निर्माण तथा उनके आवागमन हेतु अलग–अलग मार्गो का निर्धारण पहले से ही कर देना व्यवस्था का एक आवश्यक अंग होना चाहिए। जिस समय कोई कवि काव्य–पाठ कर रहा हो, उस समय किसी प्रकार की हलचल अथवा आवागमन न हो यह ध्यान रखना भी अत्यन्त आवश्यक है। कवि–सम्मेलनों में शुरू से लेकर अंत तक की सारी व्यवस्थाएं पहले से प्रयोजन रूप कर लेनी चाहिए।

कवि–सम्मेलन के समापन के समय उसमें भाग लेनेवाले कवियों, अध्यक्ष, उद्घाटनकर्ता मुख्य अतिथि, कार्यकर्ता, सहयोगी तथा श्रोताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर उन्हें कवि–सम्मेलन की सफलता में सहयोग के लिए धन्यवाद देने का नियम है। इस कर्तव्य का निर्वाह आयोजन करनेवाली संस्था के प्रधान मंत्री अथवा किसी अन्य वरिष्ठ सदस्य द्वारा किया जाता है। कहीं–कहीं धन्यवाद के उपरान्त 'राष्ट्र–गीत' के गायन के बाद ही कवि–सम्मेलन का विसर्जन होता है।

कवि–सम्मेलन में भाग लेने वाले कवियों के आतिथ्य–सत्कार, भोजन, विश्राम, यात्रा–व्यय, पारिश्रमिक अथवा पुरस्कार आदि की व्यवस्था कार्यक्रम के आयोजकों की ओर से की जाती है, वर्तमान समय के अधिकांश कवि–सम्मेलन व्यवसायिक रूप ले चुके हैं, अतः उनमें भाग लेनेवाले कविगण अपने लिए पारिश्रमिक एवं यात्रा–व्यय आदि के रूप में एक निश्चित धनराशि की मांग पहले ही कर लेते हैं। कवि तथा आयोजक के बीच पत्राचार अथवा प्रत्यक्ष भेंट आदि द्वारा निश्चित की गई वह धनराशि कवि–सम्मेलन से पूर्व ही अग्रिम रूप में अथवा कवि–सम्मेलन समाप्ति पर कवि को भेंट दी जाती है परन्तु अभी भी कुछ मंचीय–कवि ऐसे हैं, जो व्यवसायकिता से परे रहकर कवि–सम्मेलनों में साहित्य–सेवा के उद्देश्य से ही भाग लेते हैं और आयोजकों द्वारा मार्ग–व्यय एवं पारिश्रमिक आदि के रूप में उन्हें जो कुछ भी भेंट कर दिया जाता है, उसी को वे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं।

कवि–सम्मेलन के आयोजन पर होनेवाला व्यय आयोजक संस्थाएँ अथवा व्यक्ति वहन करते हैं। कुछ कवि–सम्मेलन सार्वजनिक चन्दे द्वारा धन–संग्रह करके भी आयोजित किये जाते हैं।

''मुख्य रूप से सार्वजनिक कवि–सम्मेलनों के आयोजन किसी धनाढ्य रहीश के द्वारा, किसी सरकारी या गैर सरकारी संस्था द्वारा, शिक्षण संस्था द्वारा, किसी सामाजिक या साहित्यिक संस्था द्वारा, किसी विशिष्ट साहित्यकार के स्वयं के प्रयास द्वारा आयोजित

होते थे।''

कुछ विशिष्ट अवसरों पर भी कवि–सम्मेलनों के आयोजन की परम्परा रही है जैसे–

* नूतन वर्षारंभ पर पहली जनवरी के दिन।
* वर्षान्त अर्थात् 31 दिसम्बर के दिन।
* किसी महाकवि या साहित्यकार का जयंति के अवसर पर।
* संस्थाओं द्वारा किसी विशिष्ट साहित्यकार का सम्मान आयोजित करने पर।
* 14 सितम्बर हिन्दी–दिवस के अवसर पर।
* किसी संस्था के वार्षिकोत्सव के रूप में।
* किसी नुमाइश या प्रदर्शिनी के अवसर पर।
* किसी के जन्म दिवस या निवार्ण दिवस पर।
* किसी धार्मिक या सामाजिक आयोजन के अवसर पर।

कुछ विशिष्ट प्रतिष्ठानों द्वारा किसी भी विषय पर और कभी भी आयोजन होता रहा है। जिसमें प्रतिष्ठानों के सदस्यों को पुरस्कार आदि प्रदान करने के लिए तथा विविध प्रतियोगियों के सम्मानार्थ कवि–सम्मेलनों का आयोजन होता रहता है।

कहीं–कहीं व्यवसायिक रूप से बी कवि–सम्मेलन आयोजित होते हैं, जहाँ कोई संस्था नाट्यगृह या प्रेक्षागृह में एक निश्चित धनराशि का शुल्क टिकट या पास के रूप में एकत्र करके होता रहा है।

आयोजन का स्थान :

कवि–सम्मेलनों के आयोजन अनेक स्थानों पर हुआ करते हैं। ये स्थान दर्शकों या श्रोताओं की संख्या के अनुरूप निश्चित किए जाते हैं।

छोटे–मोटे कवि–सम्मेलन सरकारी या गैर–सरकारी संस्थाओं के कक्षों में ही आयोजित हो जाते हैं।

किसी भी सामाजिक या साहित्यिक संस्था के प्रेक्षागृह में आयोजित होते रहते हैं।

किसी नगरगृह या नगरपालिका के सार्वजनिक प्रेक्षागृह में आयोजित होते हैं। खुले मैदान में पंडाल बाँधकर आयोजित होते हैं।

किसी स्कूल, कॉलेज, युनिवर्सिटी, द्वारा अपने सभागृहों में आयोजित होते हैं।

भारत सरकार ने हिन्दी प्रसारण की अभियोजना के तहत 14 सितम्बर हिन्दी दिवस के रूप में निर्धारित कर दिया है। जिस में सभी सरकारी या अर्धसरकारी संस्थाएं हिन्दी की रचनात्मक प्रवृति को बनाए रखने के लिए प्रतिष्ठान के सदस्यों द्वारा वाद–विवाद प्रतियोगिता काव्यपाठ, एकांकी, वक्तव्य, अन्ताक्षरी प्रतियोगिता, गीत–गायन स्पर्धा

आदि के द्वारा काव्य–पाठ की संभावनाओं को जीवन्त बनाए रखते हैं।

सरकारी तथा अर्धसरकारी कार्यालयों में एक हिन्दी अधिकारी कार्यालयों में है, वह भी अपनी संस्था या प्रतिष्ठान की अर्थ सहायता से काव्य–पाठ या कवि–सम्मेलन का आयोजन करता है जिसमें अपनी सीमा ओर स्तर के अनुरूप कवियों की आमंत्रित किया जाता है।[38]

संदर्भ सूचि

1. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियो का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 19
2. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 5
3. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 6
4. आनन्ददायक पारिवारिक पत्रिका, कवि सम्मेलन समाचार, 15 अक्टूबर 2008, अक द्वितीय, पृष्ठ 4
5. आनन्ददायक पारिवारिक पत्रिका, कवि सम्मेलन समाचार, गीत चाँदनी विशेषांक, 15 अक्टूबर 2009, पृष्ठ 1
6. आनन्ददायक पारिवारिक पत्रिका, कवि सम्मेलन समाचार, गीत चाँदनी विशेषांक, 15 अक्टूबर 2009, पृष्ठ 1
7. हिन्दी कवि सम्मेलन और मंचीय कवियो का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेष लक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 45
8. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 52-53
9. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 53, 54
10. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 55
11. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 57
12. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 58
13 हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 58
14. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 59
15. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 59-60
16. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 94
17. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 99
18. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 100, 101
19. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 101
20. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 102
21. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 102
22. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 63
23. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 63, 64
24. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 64
25. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 64
26. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 65
27. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 66, 67
28. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 67
29. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 68
30. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 70, 71
31. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 71
32. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 71
33. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 71, 72
34. हिन्दी कवि-सम्मेलन और मंचीय-कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 72

35. हिन्दी कवि–सम्मेलन और मंचीय–कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 72
36 हिन्दी कवि–सम्मेलन और मंचीय–कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 73
37 हिन्दी कवि–सम्मेलन और मंचीय–कवियो का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 73
38 हिन्दी कवि–सम्मेलन और मंचीय–कवियों का साहित्यिक योगदान, डॉ. विशेषलक्ष्मी वीणा, पृष्ठ 19